THE ECONOMIC TIMES

Date: 26-02-25

Startups need an AI-driven startle

structural shifts reverse capital drought

ET Editorial

The funding winter for Indian startups is persisting, with both absolute levels and the 'late-stage deals' pipeline remaining anaemic. Falling off its pandemic cliff, venture capital is yet to find its feet as Indian regulations were tightened on valuations and methodologies. The broader point is that Indian startups have been finding it difficult to raise early-stage funding for a while, and this has a domino effect on late-stage funding that gets activated when growth milestones are achieved. Regulatory interventions are designed to curb froth from building up in the startup ecosystem. However, the business environment needs to be encouraging as well for domestic innovation. The speed of churning out unicorns should not slow down dramatically.

Some of the sluggishness is driven by technology. Late-stage funding in the US is being cornered by AI, and Indian startups are likely to catch that wave sooner than later. There is a degree of inevitability about Indian innovation pulling down the cost of AI and accelerating its dispersal. Both early- and late-stage VC funding could revive if homegrown startups embrace AI as readily as earlier technology iterations. India has clocked up an impressive crop of unicorns that brought data-driven solutions to business. AI takes that process more than a few steps forward, and the next haul of billion-dollar startups may be taking shape as we speak. VCs sitting on the sidelines could start dipping their toes again in the Indian startup ecosystem.

It would not be too much of a stretch to see the current capital drought reversing once structural shifts take place in India's startup ecosystem. Startups are now more sensitive to governance standards, which makes for a cleaner flow of funds. Once the technology hurdle is overcome - and there is evidence that companies are reading their AI play, both foundational and application - there will be a fresh finding flood. The transformation potential of AI will speed up recovery once it begins.

दैनिक भास्कर

Date: 26-02-25

हमारे किसानों पर बुरा असर होगा ट्रम्प - राज का

संपादकीय

ट्रम्प की 'जैसे- को- तैसा-टैरिफ दर' की नीति का सबसे बड़ा कुप्रभाव भारत के कृषि और सम्बंधित क्षेत्रों पर पड़ने जा रहा है। देश के 45-50 करोड़ युवाओं के रोजगार, 80 करोड़ से ज्यादा लोगों की परोक्ष-अपरोक्ष आजीविका और 90 करोड़ लोगों के निवास का रिया बना यह सेक्टर हमेशा संरक्षित और वैश्विक व्यापार अनुबंध से बाहर रहा है। यह सच है कि गत 70 सालों में सरकारी नीतियों का रुझान कृषि से ज्यादा अन्य क्षेत्रों में रहा। किसानों में भी परिवर्तनों के प्रति अपेक्षित उत्साह नहीं दिखा, जितना उद्योग व सेवा क्षेत्रों में लगे लोगों ने दिखाया। ट्रम्प को इस चुनाव में मध्य-पश्चिमी काउंटीज, बल्कि यू कहें कि अमेरिका के कृषि प्रधान क्षेत्रों से जमकर समर्थन मिला। लिहाजा उनकी कोशिश होगी कि अमेरिकी कृषि उत्पाद के लिए वैश्विक बाजार पैदा करें, न कि भारत जैसे देशों का महंगा उत्पाद खरीदें । आज भारत और अमेरिका के बीच टैरिफ का अंतर 29% है, यानी अमेरिकी उत्पादों की खरीद और अपने उत्पाद की बिक्री के बीच भारत को मात्र टैरिफ से 29% का लाभ रहता है। मछली, मांस, सी-फूड, दूध, पशु व पशु उत्पाद और चावल आदि प्रमुख कृषि उत्पाद हैं, जिन्हें अब भारत नहीं बेच सकेगा। इसका असर यह होगा कि मछुआरों, धान और दुग्ध उत्पादकों को छोटा वैश्विक मार्केट मिलेगा, अन्यथा सस्ते दाम पर घरेलू बाजार होगा। ट्रम्प- राज में भारत का सबसे बड़ा संकट होगा पहले से ही कमजोर कृषि क्षेत्र |

दैनिक जागरण

Date: 26-02-25

रेवड़ी की राजनीति पर रोक के संकेत

ए. सूर्यप्रकाश, (लेखक लोकतांत्रिक विषयों के विशेषज्ञ एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

दिल्ली विधानसभा में राजनीतिक दलों के बीच लोकलुभावन घोषणाओं की होड़ लगी हुई थी। संयोग से इसी दौरान उच्चतम न्यायालय में भी ऐसी घोषणाओं से जुड़े मामले की सुनवाई चल रही थी। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश जस्टिस बीआर गवई ने ऐसी घोषणाओं के लिए राजनीतिक दलों को आड़े हाथों लेते हुए कहा कि इनके जरिये लोगों को परजीवी बनाया जा रहा है। जस्टिस गवई ने कहा कि चुनावी प्रलोभन लोगों को काम करने के लिए हतोत्साहित कर रहे हैं। महाराष्ट्र में कामगारों की किल्लत के संदर्भ में उन्होंने यह टिप्पणी की। राज्य में लाडकी बहिन जैसी योजनाओं के चलते काम किए बिना ही कुछ पैसे मिल जा रहे हैं तो मुफ्त अनाज की सुविधा भी मिली हुई है। परिणामस्वरूप काम करने के लिए लोगों की कमी हो गई है। कुछ दिन पहले ऐसे ही एक मामले की सुनवाई करते हुए उन्होंने कहा था कि राज्यों के पास निठल्लों को पैसे देने के लिए संसाधनों की कमी नहीं, मगर जब न्यायिक अधिकारियों को वेतन-पेंशन जैसी सुविधाएं देने की बारी आती है तो वे खाली खजाने का रोना रोने लगते हैं।

दिल्ली में आम आदमी पार्टी यानी आप की रेवड़ी राजनीति को जनता ने खारिज कर दिया, लेकिन ऐसी राजनीति को लेकर बहस पर अभी विराम नहीं लगा है। इस राजनीति की बात करें तो तमिलनाडु में इसकी शुरुआत हुई, जहां

मतदाताओं को लुभाने के लिए टेलीविजन सेट, मिक्सर ग्राइंडर, कंप्यूटर-लैपटाप और अन्य घरेलू उपकरणों के साथ ही मुफ्त राशन दिया जाने लगा। हालांकि कर्नाटक और केरल जैसे पड़ोसी राज्यों को यह बीमारी लंबे समय तक संक्रमित नहीं कर पाई थी, लेकिन भारतीय राजनीति में अरविंद केजरीवाल के उभार ने रेवड़ी राजनीति के समीकरण पूरी तरह बदल दिए। केजरीवाल मुफ्त बिजली, पानी और परिवहन सेवाओं के जरिये मुफ्तखोरी की राजनीति को एक अलग ही स्तर पर ले गए। तमिलनाडु और दिल्ली की रेवड़ी राजनीति में एक मूलभूत अंतर भी था कि तमिलनाडु में घरेलू उपकरण जैसी सौगात के लिए एकबारगी खर्च होता था, लेकिन आप की रेवड़ी राजनीति ने बिजली-पानी जैसी निरंतर चलने वाली सुविधाओं के लिए भी लोगों को मुफ्तखोरी की आदत लगा दी। यानी इनके लिए सरकारी खजाने पर निरंतर बोझ पड़ना तय होता है। अपनी इन पेशकशों के दम पर आम आदमी पार्टी ने दिल्ली के दो विधानसभा चुनावों में 70 में से 60 से अधिक सीटें हासिल कीं, जिसमें विपक्ष हाशिए पर चला गया तो 15 साल तक राष्ट्रीय राजधानी की सत्ता पर काबिज रही कांग्रेस उसके बाद से खाता तक नहीं खोल पाई। वहीं, आप दिल्ली माडल के दम पर पंजाब की सत्ता हासिल करने से लेकर कई राज्यों में पैठ बनाकर राष्ट्रीय दल बन गई।

दिल्ली राज्य की सत्ता में भाजपा का 27 साल से चला आ रहा वनवास अगर समाप्त हुआ है तो उसमें पार्टी के उस वादे को अनदेखा नहीं किया जा सकता, जिसमें उसने कहा कि आप सरकार की सभी कल्याणकारी योजनाएं न केवल चालू रखी जाएंगी, बल्कि उन्हें और सक्षम बनाया जाएगा। कांग्रेस भले ही दिल्ली में किसी तरह पनप न पा रही हो, लेकिन उसने भी गारंटी के नाम पर चुनाव जीतने के लिए बड़े-बड़े वादों का दांव चला। कर्नाटक की सत्ता में पार्टी ऐसे ही लोकलुभावन वादों के जरिये सत्ता में आ सकी। हालांकि इन वादों की इतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी कि राज्य के उपमुख्यमंत्री डीके शिवकुमार को सार्वजनिक रूप से कहना पड़ा कि मुफ्त की योजनाओं से जुड़े वादों की पूर्ति के बाद विकास कार्यों के लिए कुछ खास धन नहीं बचा। हिमाचल की कांग्रेस सरकार को भी ऐसे ही वादों के चलते मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। दिल्ली में आप और कर्नाटक में कांग्रेस के लोकलुभावन वादों से सबक लेते हुए भाजपा ने भी इस मोर्चे पर अपने प्रयास तेज किए। भाजपा द्वारा मध्य प्रदेश में अपनी सत्ता कायम रखने और छत्तीसगढ़ एवं राजस्थान जैसे राज्य कांग्रेस से झटकने में महिलाओं के लिए की गई पार्टी की विशेष पेशकशों की अहम भूमिका देखी गई। तेलंगाना में जनता ने कांग्रेस की गारंटियों पर भरोसा जताया, जबकि भाजपा ने वहां भी लाडली लक्ष्मी के जरिये 1,250 रुपये प्रति माह नकदी से लेकर कालेज जानी वाली लड़कियों के लिए स्कूटी का वादा किया था।

संविधान में निर्दिष्ट राज्य के नीति निदेशक तत्वों में केंद्र और राज्य सरकारों को नागरिकों का जीवन स्तर सुधारने के लिए आवश्यक कदम उठाने का निर्देश दिया गया है, लेकिन दिल्ली की आप सरकार ने लोगों के आर्थिक दर्जे को दरकिनार करते हुए सभी को मुफ्त बिजली-पानी देना और महिलाओं को मुफ्त बस यात्रा करानी शुरू कर दी। इसकी देखादेखी कांग्रेस ने भी कर्नाटक में महिलाओं को हर महीने नकदी, हर घर को 200 यूनिट मुफ्त बिजली के अलावा महिलाओं को मुफ्त बस यात्रा की सुविधा देना शुरू कर दिया। इसके बाद तो इस सिलसिले ने ऐसा जोर पकड़ा कि भाजपा भी पीछे नहीं रही। मध्य प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़ और तेलंगाना विधानसभा चुनाव के बाद हाल के हरियाणा एवं महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव में भी राजनीतिक दलों की यही मंशा दिखी। दिल्ली में भी भाजपा ने बढ-चढ़कर घोषणाएं कीं। आप ने महिलाओं को हर महीने 2,100 रुपये की राशि देने का वादा किया तो भाजपा ने 2,500 रुपये देने की घोषणा की। झुग्गी बस्तियों में रहने वालों को लुभाने के लिए भाजपा ने 'अटल कैंटीन' में पांच रुपये में पोषक आहार उपलब्ध कराने का वादा भी किया। ऐसा प्रतीत होता है कि भाजपा ने केजरीवाल को उनकी ही नीतियों से मात देने की बिसात बिछाई थी। हालांकि भाजपा के ये वादे भी सरकारी खजाने से ही पूरे होंगे।

रेवड़ी राजनीति पर अभी तक के कम से कम दो संकेत कुछ सुकून देने वाले रहे। रेवड़ी राजनीति की होड़ शुरू करने वाली आम आदमी पार्टी की दिल्ली में हार आशा की पहली किरण बनी है। दूसरी उम्मीद जस्टिस गवई के अवलोकन से जुड़ी है। अब नजरें इसी पर टिकी होंगी कि शीर्ष अदालत में रेवड़ी राजनीति के पक्ष और विपक्ष में किसी प्रकार की दलीलें दी जाती हैं और उससे क्या फैसला निकलता है?

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 26-02-25

विकेंद्रीकरण की राह

संपादकीय

पंचायती राज मंत्रालय और भारतीय लोक प्रशासन संस्थान ने हाल में जारी अपनी एक रिपोर्ट में विकेंद्रीकरण की दिशा में किए गए भारत के प्रयासों का व्यापक विश्लेषण किया है। सरकार ने संघीय ढांचे में विकेंद्रीकरण को बढ़ावा देने के लिए राज्य-स्तरीय अंतरण सूचकांक (डीआई) का जिक्र किया है। सूचकांक पंचायती राज संस्थानों को निर्देशित करने वाले संस्थागत ढांचे, ग्राम पंचायतों के कामकाज, उनकी वित्तीय व्यवस्था, स्थानीय स्तर पर क्षमता निर्माण और जवाबदेही जैसे महत्त्वपूर्ण पहलुओं की समीक्षा करता है। रिपोर्ट में राज्यों को साक्ष्य आधारित वरीयता क्रम में रखा गया है जिसमें प्रगति के साथ ही उन बिंदुओं का भी जिक्र किया गया है जिन पर और ध्यान देने की जरूरत है। ग्रामीण निकायों के लिए कुल अंतरण 2013-14 के 39.9 प्रतिशत से बढ़ाकर 2020-21 में 43.9 प्रतिशत कर दिया गया है। सभी संकेतकों के आधार पर देश के दक्षिणी राज्य, विशेषकर, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु दूसरे राज्यों से काफी आगे दिखाई देते हैं। कर्नाटक डीआई वैल्यू 72.23 के साथ शीर्ष स्थान पर है। अन्य राज्यों में महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु ने भी बाजी मारी है। इस बीच, पिछले एक दशक में उत्तर प्रदेश और बिहार में काफी हद तक सुधार दिखे हैं मगर देश के राज्यों के बीच विषमता भी उतनी ही तेजी से बढ़ी है। मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, झारखंड और पंजाब में विकेंद्रीकरण के लिहाज से खराब स्थिति में हैं।

इस रिपोर्ट में अपर्याप्त वित्त, खासकर स्वयं अपने दम पर राजस्व अर्जित करने में ग्राम पंचायतों की दयनीय स्थिति, कमजोर बुनियादी ढांचा और मानव संसाधनों की कमी ग्राम पंचायतों के सामने बड़े चुनौती के रूप में उभरे हैं। ग्राम पंचायतों के उनके अपने राजस्व की राज्यों के राजस्व में हिस्सेदारी काफी कम रही है, जो वित्तीय स्वायत्तता में कमी का संकेत दे रहा है। देश के सभी राज्यों की बात करें तो केरल में ग्राम पंचायतों की राज्य के राजस्व में 2021-22 में सर्वाधिक हिस्सेदारी रही मगर 2.84 प्रतिशत के स्तर पर यह भी मामूली ही कही जा सकती है। वास्तविकता यह है कि वित्तीय बाधाओं के कारण पंचायती राज्य संस्थान अपनी पूर्ण क्षमता के साथ काम-काज नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि वे वित्तीय मदद के लिए सरकार के ऊपरी स्तरों पर निर्भर हैं। कई राज्यों में समय पर राज्य वित्त आयोग का गठन नहीं होने से भी परिस्थिति बिगड़ी है। अब तक केवल 10 राज्यों ने छठे राज्य वित्त आयोग का गठन किया है। भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने पिछले साल पंचायती राज्य संस्थाओं पर एक अध्ययन किया था। इस अध्ययन में भी भारत में वित्तीय अधिकारों के अत्यधिक केंद्रीकरण का जिक्र किया गया था और इसमें राज्य सरकार भी कम जिम्मेदार नहीं

ठहराए गए थे। इस अध्ययन में कहा गया कि पंचायती राज्य संस्थाओं का राजस्व व्यय सभी राज्यों के सकल राज्य घरेलू उत्पाद का 0.6 प्रतिशत से भी कम था। वित्तीय प्रबंधन के अलावा रिपोर्ट में ग्राम पंचायतों में सहायक कर्मचारियों की भारी कमी का भी जिक्र किया गया है। कुछ पूर्वोत्तर एवं पहाड़ी राज्य अपर्याप्त भौतिक एवं डिजिटल ढांचे की कमी से जूझ रहे हैं। महिलाओं की सहभागिता के लिहाज से कुछ राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेश जैसे पंजाब, मध्य प्रदेश, कर्नाटक और जम्मू कश्मीर अब भी निर्धारित मानक का पालन नहीं कर पा रहे हैं। इसके विपरीत झारखंड, तमिलनाडु और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में महिलाओं के लिए आरक्षित सीट निर्धारित कोटा से कहीं अधिक है। स्विट्जरलैंड और स्कैंडिनेवियाई देशों (स्वीडन, नॉर्वे और डेनमार्क) के उदाहरण हमें बताते हैं कि सरकार एवं लोक वित्त के विकेंद्रीकरण के कैसे बेहतर परिणाम हासिल किए जा सकते हैं। बेशक, पिछले कुछ वर्षों में पंचायती राज्य संस्थाओं की स्थिति में सुधार हुआ है किंतु वित्तीय संसाधन जुटाने और प्रशासनिक क्षमता विकसित करने के लिहाज से उन्हें इसमें और सुधार करना होगा। इस संदर्भ में रिपोर्ट में ऐसे सुझाव दिए गए हैं जो नीतिगत चर्चा को समृद्ध करते हैं। इनमें आरक्षण की रोटेशन प्रणाली पर प्रत्येक चुनाव के बजाय दो से तीन कार्यकालों में एक बार विचार करने की जरूरत, लोक सभा और विधान सभा क्षेत्रों, नगर निगम और ग्राम पंचायतों के लिए समान मतदाता सूची, राज्य वित्त आयोग का समय पर गठन आदि शामिल हैं। इनके अलावा, सभी प्रकार की आवासीय एवं अन्य संपत्ति पर जायदाद कर वसूलने के लिए ग्राम पंचायतों को अधिकार देने, सहायक कर्मचारियों की नियमित भर्ती एवं उनका प्रशिक्षण और जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय सरकार लोकपाल की स्थापना करने का भी जिक्र किया गया है।

जनसत्ता

Date: 26-02-25

तपती धरती बढ़ती परेशानियां

मोहन सिंह

हमारे सौरमंडल में पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है, जहां जीवन के लिए सभी अनुकूल परिस्थितियां मौजूद हैं। पृथ्वी पर तापमान की अनुकूलता, वायु और जल की उपलब्धता तथा जीवन के लिए जरूरी पोषक तत्त्वों की मौजूदगी ने हमारे जीवन को सुखद बनाया है। इन वजहों से पृथ्वी पर मानव जीवन की हर तरह की गतिविधि संभव हुई है। वर्ष 1800 के आसपास वैज्ञानिकों को लगने लगा कि जीवाश्म ईंधन को ऊर्जा स्रोत के रूप में इस्तेमाल करने की वजह से जलवायु में परिवर्तन हो रहा है। सत्रहवीं सदी के शुरू में यूरोप में वाष्प इंजन के आविष्कार के बाद औद्योगीकरण की गति तेज हुई। मशीनों के बूते बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। इन उत्पादों की खपत और और कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए पूरी दुनिया में नए बाजार की तलाश शुरू हुई। कारखानों में ऊर्जा की जरूरतों

को पूरा करने के लिए बड़े पैमाने पर जीवाश्म ईंधन और खनिज पदार्थों का प्रयोग किया जाने लगा। पर्यावरण नुकसान की कीमत पर प्रकृति का बेरहमी से शोषण उस वक्त से शुरू हुआ।

संयुक्त राष्ट्र ने भी इस बात की पुष्टि की है कि जीवाश्म ईंधन के प्रयोग से निकलने वाली गैसों से पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है। वर्ष 1970 के दशक में वैज्ञानिकों ने पर्याप्त साक्ष्यों के आधार पर बताया कि वैश्विक ताप की वजह से पृथ्वी की सतह का तापमान लगातार बढ़ रहा है। वैज्ञानिक दृष्टि से वैश्विक ताप का अर्थ है ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ते स्तर के कारण पृथ्वी की सतह के तापमान में वृद्धि, जबकि जलवायु परिवर्तन का अर्थ पृथ्वी की जलवायु में होने वाला दीर्घकालिक परिवर्तन से है। वर्ष 1972 में ब्रिटिश रसायनशास्त्री जेम्स लवलाक और सूक्ष्मजीव विज्ञानी लिन मार्गुलिस ने 'गैया परिकल्पना प्रस्तुत किया। 'या' एक ग्रीक देवी का नाम है। इस परिकल्पना का नाम जेम्स लवलाक ने उपन्यासकार और नोबेल पुरस्कार विजेता विलियम गोल्डिंग के सुझाव पर रखा था। इस परिकल्पना में बताया गया कि पृथ्वी एक जीवंत प्रणाली है। इसमें जैविक और अजैविक दोनों घटक शामिल हैं।

वर्ष 2000 में जेम्स लवलाक ने कार्बन डाइआक्साइड की अधिक मात्रा में मौजूदगी को पर्यावरण के लिए हानिकारक बताया था। आज वायुमंडल में 52 फीसद कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ गई है। पृथ्वी की सतह का तापमान 2.5 फारेनहाइट तक बढ़ चुका है। रसायन वैज्ञानिक वालेस ब्रोकर का कहना है कि वैश्विक तापमान में वृद्धि या जलवायु परिवर्तन की तुलना में वर्षा के अनुक्रम और समुद्र के स्तर में होने वाले परिवर्तन का मानव जीवन पर कहीं गहरा प्रभाव पड़ने की संभावना है। नासा के वैज्ञानिक 'ग्लोबल वार्मिंग' पर हर महीने रपट जारी करते हैं। पिछले वर्ष की रपट में नासा के वैज्ञानिकों ने अप्रैल 2024 को सबसे गर्म महीने के रूप में दर्ज किया था। इसके पहले वर्ष 2023 में उन्होंने बताया कि बीसवीं सदी के औसत तापमान की तुलना में 1.18 डिग्री सेल्सियस ज्यादा तापमान की वृद्धि हुई है। वैज्ञानिकों ने यह भी अनुमान लगाया है कि 2035 तक वैश्विक तापमान में 0.3 से 0.7 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हो सकती है।

इन तथ्यों के आलोक में यह बात स्पष्ट है कि आने वाला हर अगला वर्ष अब कितना चुनौतीपूर्ण होगा। भारत में भी ऋतु चक्र में बदलाव की वजह से कहीं अति वृष्टि और कहीं अनावृष्टि जैसी स्थितियां पैदा हो रही हैं। आने वाला हर साल पिछले साल की तुलना में बढ़ते तापमान की वजह से मानव जीवन के साथ-साथ जलचर, थलचर और नभचर के लिए भी मुश्किल होता जा रहा है। इस साल जनवरी में ठंड का अंतराल बहुत छोटा रहा। जनवरी के अंत और फरवरी की शुरुआत में, खासकर बसंत पंचमी के बाद, मौसम में अचानक ऐसा परिवर्तन आया कि बसंत ऋतु के आगमन का जैसे पता ही नहीं चला। ऐसा लग रहा है कि हम सीधे शरद ऋतु से ग्रीष्म ऋतु में प्रवेश कर गए हैं। बसंत ऋतु की मस्ती, उल्लास - आनंद और मादकता हमारे जीवन से जैसे गायब है।

पृथ्वी पर बढ़ते तापमान का खेती-किसानी पर भी व्यापक असर पड़ने की संभावना है। अक्तूबर के बाद और रबी की बुआई के समय आमतौर पर मौसम शुष्क रहा। सरकारी आंकड़े बता रहे हैं कि पिछले साल की तुलना में इस साल गेहूं की बुआई के रकबे में 12 लाख हेक्टेयर और दलहनी फसलों की बुआई के रकबे में आठ लाख हेक्टेयर की वृद्धि हुई है। बढ़ते तापमान की वजह से रबी की फसलों का उत्पादन प्रभावित हो सकता है। खासकर गेहूं की पैदावार पर बढ़ते तापमान का असर होना स्वाभाविक है। जाहिर है कि भारत की खाद्यान्न सुरक्षा भी इससे अवश्य प्रभावित होगी। रूस - यूक्रेन युद्ध की वजह से दुनिया की खाद्यान्न आपूर्ति श्रृंखला पहले से डांवाडोल है। मगर अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने अपने पहले शासकीय आदेश में पेरिस समझौते की शर्तें मानने से इनकार कर दिया।

पेरिस समझौता हर देश के लिए एक निश्चित समय सीमा के तहत वैधानिक जिम्मेदारी तय करता है। राष्ट्रपति ट्रंप खुद को ऐसी वैधानिक हदबंदी से परे मानते हैं इससे वैश्विक स्तर पर जलवायु संकट का सामना करने के लिए हरित जलवायु कोष में वित्तीय संसाधन जुटाने के अभियान को धक्का लगेगा। यहां यह ध्यान रखना जरूरी है कि चीन के बाद कार्बन उत्सर्जन के मामले में अमेरिका दूसरे स्थान पर है। पर्यावरण की सेहत लगातार खराब हो रही है। ऐसे ज्वलंत मुद्दे पर अमेरिका की बेफिक्री समझ से परे है। हिंदी कवि जयशंकर प्रसाद की ये पंक्तियां दुनिया की तबाही से बेखबर ऐसे देश के नेतृत्व और व्यवहार को बयान करती है- 'अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा / यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।'

साठ के दशक के अर्थशास्त्री ईएफ शूमाकर का कहना है कि औद्योगिक उत्पादन करते समय उन साधनों का उपयोग करना चाहिए. जिनका नवीकरण और दोबारा उत्पादन किया जा सके। 'उपयोग करो और फेंक दो' के बजाय उसे दोबारा उपयोग किया जा सके। शूमाकर यह भी मानते हैं कि पेट्रोलियम पदार्थों, कोयला और लोहे पर आधारित क्षणभंगुर सभ्यता से निश्चित ही वह सभ्यता बेहतर होगी, जो प्रकृति से सामंजस्यपूर्ण रिश्ता कायम करते हुए यह समझ विकसित कर सके कि आत्मसंयम, स्वयं आरोपित सीमा बंधन और अपनी सीमाओं का ज्ञान ये जीवनरक्षक गुण हैं। आर्थिक विकास एक सीमा तक ही लाभदायक है, जीवन में जटिलता का संचार एक सीमा तक ही संभव है दक्षता और उत्पादकता के लिए प्रयास एक सीमा तक ही ठीक है पुनः प्राप्त किए जा सकने वाले साधनों का उपयोग एक सीमा तक करना ही बुद्धिमानी है।

इस संदर्भ में यह सुझाव भी गौर करने लायक है कि जलवायु परिवर्तन का सामना करने के लिए हमें अपनी जीवन शैली, जीवन दृष्टि और जीवन का ध्येय बदलना होगा। जलवायु परिवर्तन का सवाल आज एक विकट वैश्विक समस्या के रूप हमारे सामने खड़ा है। ऐसे समय में हमें महात्मा गांधी की यह चेतावनी याद आती है एक समय आएगा जब अपनी जरूरतों को कई गुना बढ़ाने की अंधी दौड़ में लगे लोग, जब अपने किए को देखेंगे, तब कहेंगे कि अरे हमने यह क्या किया।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 26-02-25

मोटापे की महामारी से जरूरी मुकाबला

राजीव दासगुप्ता, (प्रोफेसर, जेएनयू)

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने हालिया मन की बात कार्यक्रम में भारतीयों में बढ़ते मोटापे पर चिंता जाहिर की और लोगों से अपने खान-पान में तेल का प्रयोग कम करने की सलाह दी। अपने इस अभियान को गति देने के लिए उन्होंने विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों से 10 प्रमुख हस्तियों को नामित भी किया है। इनमें उमर अब्दुल्ला, आनंद महिंद्रा, मनु भाकर, आर माधवन, नंदन नीलेकणि, श्रेया घोषाल, निरहुआ जैसे तमाम विधाओं के लोग शामिल किए गए हैं, जो न सिर्फ आम लोगों को स्वस्थ जीवनशैली के लिए जागरूक करेंगे, बल्कि अन्य दस हस्तियों का चयन करके मोटापे खिलाफ इस लड़ाई का कों में असामान्य या अत्यधिक ई को आगे बढ़ाएंगे।

आमतौर पर वसा ऊतकों चर्बी जब जमा हो तो मोटापे की समस्या पैदा होती है। यह हमारी सेहत के लिए काफी नुकसानदेह है। बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआई), जिसकी गणना वजन (किलोग्राम में) को व्यक्ति विशेष की ऊंचाई (मीटर में) से दो बार भाग देकर की जाती है, मोटापे को सबसे प्रभावी ढंग से मापता है। बेशक, इसकी कुछ सीमाएं हैं, लेकिन यह वयस्कों में कम वजन, अधिक वजन और मोटापे को वर्गीकृत करने का एक सामान्य सूचकांक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी बीएम एमआई आंकड़ों के आधार पर ही वयस्कों में मोटापा तय करता है

स्वास्थ्य के क्षेत्र में काम करने वाले वैज्ञानिकों के नेटवर्क एनसड़ी रिस्क फैक्टर कोलैबोरेशन का एक अध्ययन द लैंसेट में छपा था, जिसमें 22.2 करोड़ प्रतिभागियों के साथ किए गए 3,663 जनसंख्या- आधारित अध्ययनों के आंकड़ों का उपयोग किया गया था। उस अध्ययन में पाया गया कि भारत सहित परे दक्षिण एशिया में पतलेपन और मोटापे की समस्या संयुक्त रूप से बनी हुई है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 के आकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि देश में पेट का मोटापा 40 फीसदी महिलाओं और 12 फीसदी पुरुषों में है। चिंता की बात यह है कि 30 से 49 उम्र की 10 में से पांच या छह महिलाएं पेट के मोटापे से पीड़ित हैं। बुजुर्ग समूहों, शहरी आबादी, संपन्न तबके और मांसाहार करने वाली महिलाओं में यह समस्या अधिक दिखी। हालांकि, इसक इसका विस्तार ग्रामीण इलाकों में, खासतौर से निचले व मध्यम सामाजिक आर्थिक तबकों में भी दिखने लगा है।

एक अन्य आंकड़े में, हे में, जो 'नियंत्रित मधुमेह भारत- 201 017' (प्रथम चरण) के अंतर्गत एक लाख से अधिक आबादी का सर्वेक्षण करके तैयार किया गया था, बताया गया है कि देश की 4 40.3 फीसदी आबादी मोटापे से पीड़ित है, जिसमें द में दक्षिणी राज्यों में सबसे अधिक 46.51 प्रतिशत और पूर्वी राज्यों में सबसे कम 32.96 फीसदी लोग मोटापे से जूझ रहे हैं। इसमें भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं में अधिक मोटापा पाया गया था और जहां 41.88 प्रतिशत औरतें इससे लड़ रही थीं, वहीं पुरुषों में यह आंकड़ा 38.67 प्रतिशत था। इस सर्वेक्षण ग्रामीण आबादी (36.08 प्रतिशत) की तुलना में शहरी आबादी (44.17 प्रतिशत) और 40 वर्ष से कम उम्र वाले लोगों (34.58 प्रतिशत) के मुकाबले उम्रदराज लोगों (45.81 प्रतिशत) में ज्यादा मोटापा दिखा।

शिक्षा को यदि आधार मानें, तो सर्वे के मुताबिक 44.6 फीसदी कॉलेज पूरा कर चुकी आबादी मोटापे से पीड़ित है, जबकि 38 फीसदी वह आबादी, जिसने कोई औपचारिक शिक्षा नहीं ली है। इतना ही नहीं, कम शारीरिक गतिविधि करने वाले लोगों (43.71 प्रतिशत) में मोटापा अधिक था, जबकि सक्रिय रहने वाले लोगों (32.56 प्रतिशत) में तुलनात्मक रूप से कम।

विश्व स्तर की बात करें, तो 1975 के बाद मोटापे की दर तीन गुना बढ़ी है और 13 फीसदी वयस्क आबादी मोटापे व 39 फीसदी अधिक वजन की शिकार है। ग्लोबल ओबेसिटी ऑब्जर्वेटरी के अनुसार, अमेरिकन सामोआ (75.92 प्रतिशत),

टोंगा (72.35 प्रतिशत) और नाउरू (71.06 प्रतिशत) सहित प्रशांत द्वीप के देश इस सूची में सबसे ऊपर हैं। अमेरिका और सऊदी अरब जैसे उच्च आय वाले देशों में यह लगभग 45 फीसदी है। प्रशांत द्वीप समूह के देशों में तो मोटापे की समस्या औपनिवेशिक प्रभाव से हुए सामाजिक बदलावों, नकदी अर्थव्यवस्था और खाना- पान संबंधी आदतों के कारण है।

वास्तव में, मोटापा और अधिक वजन की समस्या समय के साथ बढ़ती जाती है। इसका खतरा सिर्फ इसी बात से तय नहीं होता कि कितना खाना खाया जा रहा है, बल्कि किस तरह के खाद्य या पेय पदार्थों का सेवन किया जा रहा है, कितनी और किस तरह की शारीरिक गतिविधियां की जा रही हैं और रात में कितनी अच्छी नींद ली जा रही है, उन सबसे भी यह निर्धारित होता है। मोटापे का सामाजिक माहौल और विभिन्न तनावों से भी गहरा रिश्ता है। संक्षेप में कहें, तो व्यवहार और जीवनशैली (कम शारीरिक गतिविधियां, विश्राम की मानसिकता, खराब खान-पान और खराब नींद), आसपास का माहौल (आस-पड़ोस और परिवार की आदतें'), पारिवारिक इतिहास ((आनुवांशिक प्रवृत्ति) और अंदरूनी शारीरिक बदलाव (जिस तरह से शरीर भोजन को ऊर्जा में बदलता है) मोटापे की वजहें हैं।

जाहिर है, मोटापा एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या है। अधिक वजन और मोटापा टाइप 2 मधुमेह, हृदय संबंधी रोग, कई तरह के कैंसर और अन्य समस्याओं को जन्म दे सकता है। जो आगे चलकर मौत की वजहें पाने के इस समस्या से लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य में संजीदगी दिखानी होगी और जनसंख्या आधारित रणनीति बनानी होगी। ऐसा इसलिए, क्योंकि सार्वजनिक स्वास्थ्य से जुड़े कार्यक्रमों को इसमें अब तक सीमित सफलता मिल सकी है।

आमतौर पर खान-पान की आदतों में बदलाव करके, अपनी शारीरिक गतिविधियों को बढ़ाकर और सुस्त जीवनशैली से दूरी बनाकर हम मोटापे को काफी हद तक रोक सकते हैं। रही बात सरकार की, तो उसे डिब्बाबंद या पैकेट बंद खाद्य पदार्थों पर पोषक तत्वों की जानकारी को अनिवार्य बनाने, खाद्य व पोषण संबंधी जानकारियों को बताने और बीमार करने वाले खाद्य पदार्थों की मार्केटिंग और विज्ञापन को प्रतिबंधित करने से जुड़े नियम बनाने चाहिए। उसे राजकोषीय खाद्य नीतियां तय करनी होंगी। नौजवानों और वयस्कों को पार्कों और उन जगहों पर वक्त बिताना चाहिए, जहां उनकी शारीरिक गतिविधियां हो सकें या उनमें चलने की आदत विकसित हो सके। जाहिर है, मोटापे या अधिक वजन से जुड़ी स्वास्थ्यगत समस्याओं को देखते हुए प्रधानमंत्री मोदी का आह्वान प्रासंगिक है। इस पर सभी को ध्यान देना चाहिए।